International Journal of Humanities and Social Science Invention (IJHSSI)
ISSN (Online): 2319 – 7722, ISSN (Print): 2319 – 7714
www.ijhssi.org ||Volume 15 Issue 1 || January 2026 || PP. 133-136

आर्थिक विकास के मार्ग का एक समाजशास्त्रीय विश्लेषण

डॉ. विजय कुमार वर्मा
डॉ0 शकुन्तला मिश्रा राष्ट्रीय पुनर्वास
विश्वविद्यालय, लखनऊ

प्रस्तुत लेख में आर्थिक विकास के विविध लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए एक अब तक विश्व के विभिन्न समाजों के तीन प्रकार के सिद्धान्तों पर आधारित कार्यक्रमों को चर्चा की गयी हैं। (1) एक है पूँजीवादी आर्थिक व्यवस्था के अन्तर्गत ही व्यवस्था में संशोधन और विस्तार लेकर विकास के नये लक्ष्यों को प्राप्त करना। इसे पूँजीवादी एवं ''नव पूँजीवादी'' या कल्याण मूलक विकास का मॉडल भी कहते हैं। (2) दूसरा है मार्क्स के सिद्धांतों से प्रेरित समाजवादी मॉडल जिसके प्रयोग द्वारा रूस और यूरोप के अन्य साम्यवादी देशों और एशिया में विकास के लक्ष्य प्राप्त करने की चेष्टा हुई (3) तीसरा है मिश्रित मॉडल या नेहरू मॉडल जिसका विशेष प्रयोग भारत में योजना के अन्तर्गत किया जा रहा है। इसके अतिरिक्त एक गाँधीवादी मॉडल भी है जिसका प्रयोग अभी तक नहीं हुआ है। अब कुछ विचारक 21वीं सदी में इस मॉडल की प्रासंगिता की चर्चा करं रहे हैं।

नव पूँजीवादी विकास का मॉडल : शूम्पीटर का सिद्धान्त

यहाँ आर्थिक विकास के कुछ समकालीन नव पूँजीवादी सिद्धान्तों और विचारों का ही विश्लेषण करेंगे जिनकी एक समय अपने देश में बहुत चर्चा हुई थी।

शूम्पीटर ने आर्थिक वृद्धि और विकास के बीच भेद करते हुए लिखा है कि आर्थिक वृद्धि का सीधा अर्थ होता है प्रचलित पद्धति द्वारा क्रमिक गति से उन्हीं वस्तुओं का उत्पादन बढ़ाना जिनका पहले से उत्पादन हो रहा है। लेकिन आर्थिक विकास तो इसके विपरीत प्रक्रिया है। जो इस प्रकार है वस्तुतः उत्पादन के प्रचलित आर्थिक संरचना में उलट फेर लाने के निर्मित प्रचलित उत्पादक साधनों को ही बिल्कुल नये ढंग से जोड़कर उनको नये ढंग से स्थापित कर उनका ऐसा उपयोग किया जाये ताकि पहले से प्रचलित उत्पादन प्रणाली की शर्तों में बदलाव आये (2) नई–नई वस्तु बाजार में उपलब्ध हो (3) नये–नये बाजार विकसित हो (4) उद्योगों का पुनर्गठन हो (5) इन सभी लक्ष्यों के पीछे नवाचार की मुख्य भूमिका होगी। इन्हीं पाँच तत्त्वों को शूम्पीटर ने उत्पादन क्रान्ति की संज्ञा दी है। इन्हीं पहलुओं को उत्पादन प्रणाली में क्रान्तिकारी परिवर्तन कहते हैं, अर्थात् विकास का अर्थ है– उत्पादन के साधनों के नये संयोगों द्वारा नयी–नयी वस्तुओं का उत्पादन, तदनुसार उद्योगों का पुनर्गठन तथा नये–नये उद्योगों की स्थापना जो नये साहसिक उद्धमी समूहों द्वारा ही संभव होते हैं। एक शब्द में इसे नवाचार कहेंगे। इसका अर्थ यह हुआ कि नवाचार द्वारा जो परिवर्तन होते हैं, उन्हें भी विकास के अन्तर्गत रखा जाता है।

इस तरह स्पष्ट है कि आर्थिक विकास का मूल तत्त्व पूँजी का संग्रह नहीं है बल्कि उत्पादन के प्रचलित साधनों का ऐसा नया संघटन करना जिससे नए उद्योगों के लिए नये साधन बन सके, नई–नई फर्मों का उदय हो जो रोज नयी–नयी वस्तुओं का उत्पादन करे। शूम्पीटर ने इस प्रसंग में इस पर जोर दिया है कि इस तरह का नया आर्थिक विकास तो साहसिक उद्धमी द्वारा ही संपन्न होता है। नये–नये उद्धमी ही नये–नये तरीकों की खोज करते हैं, उपलब्ध पूँजी का नया उपयोग करते हैं, उत्पादन के साधनों के नये–नये समन्वय स्थापित करते हैं। सारांश यह है कि पूँजी चाहे जितनी जमा हो, अगर नवाचार प्रेरित साहसिक उद्धमी नहीं हो तो विकास संभव नहीं होता है। निष्कर्ष यह है कि शूम्पीटर ने विकास के लिए (क) पूँजी और (ख) प्रौद्योगिकी के साथ–साथ (ग) नवाचार के संवाहक (घ) साहसिक व्यक्तित्व एवं (च) उनके उत्प्रेरक मनोवैज्ञानिक तत्त्व को आवश्यक माना है। शूम्पीटर का यह सिद्धान्त तीसरी दुनिया के विकास के लिए विशेष रूप से प्रासंगिक सिद्ध हुआ है। शूम्पीटर ने साहसिक नवाचारी उद्धमी के प्रसंग में यह भी कहा है कि पूँजीवादी विकास के आरंभिक चरण में पूँजीपति और उद्यमी दोनों एक ही व्यक्ति होते थे, लेकिन समकालीन उन्नत विकसित देशों में उद्यमी समूह अब पूँजीपति से पृथक होते हैं। आज ये उद्यमी कंपनियों के कुशल और साहसिक मैनेजर या कंपनी के बोर्ड के डाइरेक्टर के रूप में अपनी भूमिका अदा करते हैं। ये लोग अपनी दूर दृष्टि, नई सोच, नई पद्धति खोज कर अपने संगठन कौशल के सहारे विकास की नयी मंजिल तय करते हैं।

आर्थर लेविस का मॉडल

एक दूसरे अर्थशास्त्री आर्थर लेविस ने भी विकासशील समाजों के आर्थिक विकास की समस्याओं पर विस्तृत विचार किया है। इस प्रसंग में आर्थर लेविस ने आर्थिक वृद्धि और विकास के बीच भेद नहीं किया, इसलिए कि उसके मतानुसार निरन्तर आर्थिक वृद्धि के फलस्वरूप जनसमूह की आमदनी में भी वृद्धि होती है। लेविस ने अपने सिद्धान्त को स्पष्ट करते हुए इन समाजों की अर्थव्यवस्था को दो हिस्सों में बंटा हुआ बताया है। एक है मात्र जीविका निर्वाह वाली अनुत्पादक अर्थव्यवस्था जिसमें प्रचुर और अतिरिक्त श्रम उपलब्ध होता है। दूसरी है पूँजीवादी व्यवस्था जो निरन्तर आर्थिक विकास का स्त्रोत या केन्द्र होती है। इसी क्षेत्र से विकास की नई–नई मंजिलें तय हो सकती हैं। लेकिन आरंभ में इस क्षेत्र का दायरा इतना छोटा होता है कि पहले क्षेत्र के अतिरिक्त श्रम का इसमें पूरा उपयोग नहीं हो पाता है। अतः

ग्रामीण और शहरी दोनों क्षेत्रों में बेकारी और गरीबी का चक्र चलता रहता हैं इसे ही अविकसित अर्थ–व्यवस्था की विशेषता कहते हैं। इस स्थिति में जो निरन्तर बढ़ते हुए अतिरिक्त श्रमिक होते हैं, जिनमें अधिकांश महिलाएँ भी शामिल हैं, वे गाँव शहर में इधर–उधर मजदूरी कर जैसे–तैसे जीविका चलाते हैं।

इस स्थिति में परिवर्तन तब आता है जब पूँजीवाला क्षेत्र पूँजी संग्रह कर अतिरिक्त श्रम को नये धंधों में लगाता है। इस तरह प्रथम चरण में पूँजीवाला क्षेत्र उत्पादन और रोजगार में वृद्धि के लिए श्रमोन्मुखी तकनीक का उपयोग करता है ताकि अधिक से अधिक अतिरिक्त श्रम का पूँजी के क्षेत्र में उपयोग हो सके। विकास की इस पहली मंजिल तय करने के बाद पूँजी प्रधान तकनीकों को अपनाया जाता है जिसमें सीमित श्रम का ही उपयोग होता है। लेकिन तब इस तरीके से जो निरंतर आर्थिक वृद्धि होती है उससे श्रमिकों के जीवन स्तर में क्रमशः सुधार होता है। लेविस ने आर्थिक विकास के संदर्भ में उस प्रक्रिया पर ही जोर दिया है जिसके तहत समाज अपनी राष्ट्रीय आमदनी में से कम से कम 12 प्रतिशत से 15 प्रतिशत बचत कर तेजी से पूँजी संग्रह करने में सक्षम हो। उसने यह भी स्पष्ट कर दिया है कि अविकसित अर्थव्यवस्था की 80 फीसदी गरीब आबादी बचत नहीं कर सकती है, इस तरह के समाज में जो भूमि के बड़े स्वामी या जमींदारों का समूह होता है, वह अपने अतिरिक्त धन का भोग विकास, शान–शौकत, शादी–ब्याह के मौके पर अपव्यय करता है। इस वर्ग की यही दिखाऊ भोगवादी मनोवृत्ति होती है। भारत जैसे समाज में आज भी हम पूँजी का इस प्रकार का दुरूपयोग देखते हैं। तब रह गया पूँजीपति वर्ग, यही वर्ग बचत करता है, इसके मुनाफे में जैसे–जैसे वृद्धि होती है, उसे वह पुनः पूँजी में बदल कर नये धन्धों में लगाता है जिससे निरन्तर आर्थिक वृद्धि संभव होती है।

अन्त में, लेविस ने इस वृद्धि के लिए राज्य की भूमिका को भी महत्त्वपूर्ण बताया है। वस्तुतः राज्य कभी–कभी पूँजीपति वर्ग की अपेक्षा टैक्स द्वारा अधिक पूँजी का संग्रह कर सकता है। इस तरह पूँजीपति वर्ग और राज्य के सम्मिलित प्रयास से कालक्रम में पूँजी के क्षेत्र में तेजी से विस्तार होता है, अतिरिक्त धन बनता है और पूँजीपति वर्ग तेजी से बढ़ता है।

पूँजी संग्रह के अतिरिक्त राज्य विकास के इस दौर में टैक्स, व्यापार, मुद्रा आदि के मामले में अधिक उदार नीति अपनाकर विकास का मार्ग प्रशस्त कर देता है।

रोस्टो का सिद्धान्तः आर्थिक विकास के चरण

आर्थिक विकास की अवधारणा के संदर्भ में एक प्रश्न उठता है कि क्या किसी भी समाज में आर्थिक विकास निश्चित चरणों में होता है? इस प्रश्न के उत्तर में रोस्टो ने अपना प्रसिद्ध सिद्धान्त 'आर्थिक वृद्धि के चरण' प्रस्तुत किया जो काफी लोकप्रिय हुआ था।

रोस्टो ने आर्थिक वृद्धि के पांच चरणों का उल्लेख किया है। पिछले चरण को उसने पारंपरिक परिवेश की संज्ञा दी है। इस चरण की विशेषता यह है कि उत्पादन क्षमता की वृद्धि की संभावना इस दौर में सीमित होती है। इसके तीन कारण प्रमुख होते हैंः एक, इस दौर में विज्ञान और टेक्नोलॉजी का विकास बहुत कम हुआ रहता है जिसके फलस्वरूप उत्पादन के औजार और प्रणाली में नयापन नहीं आ पाता है और पुरानी टेक्नोलॉजी के सहारे आर्थिक वृद्धि एक हद तक पहुँच कर अटक जाती है। दूसरा कारण समाज में प्रचलित पारंपरिक मूल्य, विचारधारा और स्थिरतावादी दृष्टिकोण के कारण विकास की संभावना सीमित ही रह जाती है। एक तीसरा कारण भी होता है, इस दौर में कृषि की प्रधानता होती है और इसकी उत्पादन क्षमता सीमित होती है क्योंकि न तो इस क्षेत्र में समुचित पूँजी उपलब्ध होती है और न ही विकासोन्मुख टेक्नोलॉजी। यही नही, समाज में 80–90 फीसदी निरक्षरता भी रहती है जो विकास की प्रगति में एक बड़ी बाधा होती है।

इसी जड़ स्थिति से निकलने का जब प्रयास शुरू होता है तो उसे विकास का दूसरा चरण कहा जाता है। इस दौर में बड़े पैमाने पर उद्योगीकरण के लिए अनुकूल स्थिति बनने लगती हैय जैसे, एक ओर पूँजी का संग्रह, बैंकों का विस्तार होता, है तो दूसरी ओर शिक्षा के उद्देश्य में बदलाव आता है। इस दौर में शिक्षा द्वारा लोगों को आर्थिक परिवर्तन के लिए शिक्षित बनाया जाता है। इसके साथ–साथ मजबूत केन्द्रीय राज्य सत्ता स्थापित होती है, क्योंकि वगैर मजबूत सत्ता के विकास की गति तेज हो ही नहीं सकती है।

समाज जब इस दूसरे चरण से निकल कर विकास के तीसरे चरण में प्रवेश करता है, तो उसे रोस्टो ने (Take of stage) स्वावलम्बी और स्वचालित (Self sustaining and self generating) स्थिति की संज्ञा दी है। अब समाज इस स्थिति में पहुँच जाता है जब वह बढ़ती आवश्यकता के अनुकूल नये–नये उद्यमों, धंधों का विकास करता है, यानी नयी आर्थिक विधि का विकास होता है। इस तरह समाज की आर्थिक व्यवस्था स्वावलम्बी होती है, साथ–साथ बढ़ती आवश्यकता के अनुकूल नये–नये आर्थिक धन्धों का विकास होता हैरू पूँजी का जो विस्तार होता है और इस तरह समाज स्वावलम्बन की स्थिति में पहुँचता है जो विकास की दृष्टि से सबसे महत्त्वपूर्ण चरण माना गया है। एक बार अर्थव्यवस्था जब (Take of stage) में पहुँच जाती है तब उसमें निरन्तर विकास अवश्यम्भावी हो जाता है। जैसे, राष्ट्रीय आय के संदर्भ में कम से कम 10 प्रतिशत अधिक पूँजी का निवेश होने लगता है। इस कारण फी व्यक्ति आमदनी में वृद्धि होती है। ध्यान देने की बात है कि रोस्टो ने यह मत व्यक्त किया है कि (Take of stage) में आबादी की वृद्धि के अनुपात में अधिक पूँजी तथा मानवीय संसाधन का उपयोग होना अपेक्षित होता है। इसके अलावा कुछ अन्य गैर–आर्थिक तत्त्व भी महत्त्वपूर्ण हैं। उनमें से एक अनिवार्य शर्त यह होती है कि परिवर्तन के लिए जो समूह प्रतिबद्ध होता है, उसी समूह के हाथ में राजनैतिक सत्ता होनी चाहिए।

चौथे चरण में आधुनिक टेक्नोलॉजी का उपयोग संपूर्ण आर्थिक क्षेत्र में होने लगता है। इस चरण को विकास का प्रौढ़ स्टेज क्षेत्र विकसित होते हैं। ये नये क्षेत्र निरन्तर विकास की प्रक्रिया को सुदृढ़ करते हैं। जैसे संयुक्त राष्ट्र

अमेरिका में 19वीं सदी के उत्तर काल में रेलवे, कोयला, लोहा, भारी इंजीनियरिंग उद्योगों ने संपूर्ण अर्थव्यवस्था को परिचालित किया, उसके फलस्वरूप फौलाद, बड़े जहाज, बिजली तथा ऊर्जा के नये क्षेत्रों में राष्ट्रीय आमदनी 10 से 20 प्रतिशत पूँजी तक लग गयी और इस तरह तीसरे चरण यानी स्वावलम्बी स्थिति से लगभग 60 वर्ष की अवधि से विकास प्रौढ़ता पर पहुँचा। रोस्टो ने इसे प्रौढ़ विकास का एक मॉडल माना है।

अन्त में, पूरे समाज में पांचवां चरण आता है, जब आम लोगों को भी उपभोग की अनेक सामग्रियां उपलब्ध होती हैं, इसे ही उपभोक्ता संस्कृति के नाम से हम पारिभाषित करते हैं। इसी दौर में समाज के सभी समूहों निम्न, दबे–पिछड़े समूहों के लिए सर्वांगीण कल्याण योजनायें लागू करना संभव होता है। शिक्षा, स्वास्थ्य, गृह निर्माण आदि क्षेत्रों में इतना विकास होता है कि ये सुविधायें सबके लिए उपलब्ध हो जाती हैं। अमेरिका में ऐसा ही हुआ। लेकिन किसी समाज के इस चरण में पहुंचने पर उसके सामने तीन विकल्प प्रस्तुत होते हैंः एक सर्वांगीण कल्याण कार्यों तथा उपभोग की सुविधाओं में निरन्तर विस्तार, दूसरा, जीवन के हर क्षेत्र में टेक्नोलॉजी और मशीनीकरण का विस्तार और प्रयोग, तीसरा विकल्प, अंतर्राष्ट्रीय मंच पर अधिक से अधिक सत्ता या वर्चस्व प्राप्त करना। रोस्टो के विचारानुसार अमेरिकी समाज ने दूसरे विकल्प को चुना है। परिणाम यह हुआ कि प्रत्येक अमेरिकी परिवार के पास मोटर गाड़ी जैसी उपभोग की सामग्री उपलब्ध हुई, घरों में नाना प्रकार की मशीनों का प्रयोग होने लगा, इस तरह जीवन पूर्ण उपभोक्तावादी होता गया।

रोस्टो के द्वारा प्रतिपादित विकास के इस मॉडल की आलोचना भी हुई है। पहली बात, यह मॉडल कुछ ही राष्ट्रों पर लागू हो सकता है, कुछ पर नहीं। भारत. ने इस मॉडल पर चलने की चेष्टा की है, पर अब तक टेक ऑफ स्टेज से ही गुजर नहीं पाया है यद्यपि अनेक क्षेत्रों में विकास हुए हैं। दूसरी बात, रोस्टो का यह मॉडल उद्योगीकरण से जुड़ा हुआ है लेकिन भारतीय विकास के अनुभव ने यह सिद्ध कर दिया है कि आर्थिक विकास, उद्योगीकरण और उन्नत टेक्नोलॉजी के प्रयोग के लिए कुछ सामाजिक और सांस्कृतिक शर्ते होती हैं जिन्हें पूरा करने पर ही हम विकास की गति तेज कर सकते हैं।

वस्तुतः रोस्टो के इस सिद्धान्त के पीछे युद्धोत्तरकालीन अन्तर्राष्ट्रीय शीतयुद्ध वाली राजनीति का प्रभाव था।

आर्थिक विकास का क्रजनेट मॉडल

एक प्रसिद्ध अर्थशास्त्री क्रजनेट ने आधुनिक आर्थिक वृद्धि की 6 विशेषताओं को रेखांकित किया है :

1. प्रति व्यक्ति उत्पादन और जनसंख्या में उच्च वृद्धि दर,
2. सकल उत्पादकता, विशेषकर श्रमिक उत्पादन क्षमता की उच्च वृद्धि दर,
3. अर्थव्यवस्था की संरचना में परिवर्तन,
4. सामाजिक और वैचारिक स्तर पर भी महत्त्वपूर्ण परिवर्तन,
5. आर्थिक दृष्टि से विकसित देशों का बाकी दुनिया में बाजार और कच्चे माल के लिए पहुँचना,
6. दुनिया की मात्र एक तिहाई आबादी के बीच ही इस आर्थिक वृद्धि का सीमित विस्तार।

ये सभी एक दूसरे से संबंधित हैं और आज के विकसित देशों में इनका उचित समन्वय भी हुआ है। इस मॉडल से स्पष्ट है कि तीसरी दुनियां पर इसे यथावत लागू नहीं किया जा सकता हैं। तीसरी दुनियां द्वारा विकास की अपनी रणनीति लागू करने में इन अनुभवों को ध्यान में रखकर अपनी स्थिति में अनुकूल परिवर्तन लाने का कदम उठाया जाना सही दिशा का कदम होगा। इसलिए हमने उक्त मॉडल की संक्षिप्त चर्चा की है।

बुनियादी आवश्यकता पूर्ति की नीति

इन पाश्चात्य अर्थशास्त्रियों के अतिरिक्त पिछले दशकों में भारत तथा कुछ अन्य विकासशील देशों के आर्थिक विकास के तथ्यों के आधार पर यह विचार सामने आया है कि बाजार वाली मुक्त अर्थव्यवस्था के अन्तर्गत भी आर्थिक वृद्धि के साथ गरीबी उन्मूलन संभव है। इस संदर्भ में बुनियादी आवश्यकता पूर्ति की रणनीति है जिसे विश्व संस्थाओं ने भी अनुमोदित किया है। इस नीति की निम्नलिखित विशेषता उल्लेखनीय हैरू

(1) इस नीति की आधारभूत मान्यता यह है कि आर्थिक विकास के अन्तर्गत न केवल निरन्तर आर्थिक वृद्धि बल्कि गरीबी उन्मूलन और निरन्तर रोजगार के अवसरों में विस्तार की दिशा में ठोस प्रगति भी अनिवार्य है।

(2) इस व्यापक लक्ष्य प्राप्ति के मार्ग में पहले बुनियादी आवश्यकता की पूर्ति की रणनीति अन्य पूँजीवादी रणनीतियों की अपेक्षा अधिक कारगर सिद्ध हो सकती है। वह कैसे ?

(3) करोड़ों आम लोगों की बुनियादी आवश्यकताओं की पूर्ति होने पर घरेलू माँग बढ़ेगी, (ख) फलस्वरूप अधिक पूँजी लगाने की प्रेरणा मिलेगी, (ग) उद्योगों के रास्ते के कुछ बाधक तत्त्वों का निराकरण होगा।

(4) निर्धन समूहों के बीच संसाधनों के बंटवारे से समाज की श्रम शक्ति के तकनीकी कौशल में वृद्धि होगी, उनमें नवाचार, कुछ नया तरीका खोजने की वृत्ति को भी प्रोत्साहन मिलेगा। इस तरह शूम्पीटर द्वारा प्रस्तुत विकास की एक महत्त्वपूर्ण शर्त भी पूरी होगी।

(5) आर्थिक विभाजन में गैर बराबरी कम करने की नीति के तहत श्रम प्रधान तकनीकी का उपयोग कर छोटे तथा मध्यम स्तर के उद्योगों पर भी ध्यान दिया जायेगा।

इससे पूँजी, रोजगार, व्यापार और विविध आर्थिक सेवाओं में विस्तार होगा।

बुनियादी आवश्यकता पूर्ति की इस नीति की सफलता के लिए निम्नलिखित कार्यक्रमों को लागू करना आवश्यक माना गया है (1) छोटे और मध्यम उद्यमों तथा श्रम प्रधान उत्पादन तकनीक के लागू करने में जो कानूनी वित्तीय और संस्थागत बाधायें हैं, उनका तत्काल निराकरण करना (2) भूमि तथा अन्य कृषि सुधार कार्यक्रम लागू करना (3) प्रशासन

तंत्र में परिवर्तन लाना ताकि निर्धन समूहों के बीच सार्वजनिक सेवा सुलभ हो (4) संसाधनों का वंचित समूहों में विभाजन को प्राथमिकता ।

निष्कर्ष–स्पष्ट है कि पूँजी विस्तार की नीति पूँजी के संकोच और केन्द्रीयकरण की नीति है जबकि बुनियादी आवश्यकता पूर्ति की नीति पूँजी विस्तारन या वितरण की नीति है।

विकास का वैकल्पिक समाजवादी मॉडल

एक मत यह भी प्रचलित रहा है कि पूँजीवादी व्यवस्था में संशोधन के बावजूद समाज में विकसित अन्तर्राष्ट्रीय स्तरों की तुलना में तीसरी दुनिया में बराबरी, आर्थिक समृद्धि और संपन्नता नहीं आ पायेगी। इसके लिए समाजवादी मॉडल ही सही विकल्प है। इस विकल्प की विशेषताओं का विस्तृत विवरण योजनाबद्ध विकास के प्रसंग में एक दूसरे अध्याय में दिया गया है।

यहाँ इतना ही उल्लेख करना है कि रूस, चीन तथा अन्य साम्यवादी देशों में अब समाजवादी मॉडल को संशोधित किया जा रहा है। इन देशों में भी स्वतंत्र अर्थव्यवस्था वाली नीति कुछ संशोधनों के साथ अपनाई जा रही है। जहाँ तक अपने देश भारत का सवाल है, यहाँ आम मिश्रित व्यवस्था चलाई जा रही थी लेकिन क्रमशः अधिक मुक्त व्यवस्था की ओर जाने की नीति भी धीरे–धीरे आ रही है जिसकी विस्तृत चर्चा योजनाबद्ध विकास के संदर्भ में की गयी है।

कुछ पाश्चात्य देशों ने द्वितीय विश्वयुद्ध के पहले वैज्ञानिक, तकनीकी और विकसित उद्योगीकरण के आधार पर दुनिया के बाकी देशों पर आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक सत्ता कायम कर ली थीं और इन देशों के लिए ये ''पिछड़े" शब्द का प्रयोग करते थे। लेकिन द्वितीय विश्व युद्ध के बाद जब उपनिवेशवाद का अन्त होना शुरू हुआ और विश्व संस्था और विश्व मानवीय दृष्टि का विकास हुआ तो षपिछड़ेष के बदले अविकसित देश की संज्ञा का प्रयोग आरंभ हुआ। लेकिन इस नामकरण में भी भेदमूलक मूल्य की ध्वनि थी, अतः इसके अधिन तटस्थ शब्द षविकासशील देशष का प्रयोग प्रचलित हुआ और इन देशों को विकास के आधार पर दुनिया के क्षेत्रीय बंटवारे में तीसरी दुनिया के अन्तर्गत रखा गया। इस प्रकार आर्थिक विकास के निम्न सूचक तत्वों के आधार पर सभी देशों को तीन कोटियों में बांटा गया जिन्हें क्रमशः पहली, दूसरी और तीसरी दुनिया के नाम से जाना जाता है। विकास के सूचक शब्द है, प्रति व्यक्ति आय, कुल राष्ट्रीय आय एवं सामाजिक सुरक्षा ।

संदर्भ सूची

- दोषी, एस. एल एवं जैन, पी. सी.(२०२२) भारतीय सामाजीक संरचना, रावत पब्लिकेशन, जयपुर।
- अहमद, एम, (2018), विकास का समाजशास्त्र, न्यू ऐज इंटरनेशनल पब्लिकेशन
- Pieterse, J.N. (2002), Development theory, Sage Pub Ltd.
- Freidman, J., (1992) Empowerment: The politics of Alternative Development